प्रजातंत्र में हम और वे

प्रो. जगत एस. मेहता

स्वतंत्रता के पश्चात भारत की संविधान सभा ने इस देश में जनतंत्रीय व्यवस्था की स्थापना कर स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील और समर्पित महापुरुषों को सही अर्थ में श्रद्धांजलि अर्पित की। गांधी जैसे महापुरुषों ने आजादी की लड़ाई के दौरान ही भविष्य के भारत का सपना देखा था। गांधी जी ने एक बार कहा भी था कि "मेरे सपनों का भारत" वह भारत होगा जिसमें एक गरीब से गरीब व्यक्ति यह महसूस करे कि यह उसका देश है और उसके भाग्य निर्माण में वह भी समान रूप से भागीदार है। एक ऐसा भारत जिसमें उच्च और निम्न वर्ग में भेद नहीं होगा। छुआछूत का कोई स्थान नहीं होगा। महिलाएं भी पुरुषों के समान ही अधिकारों का उपभोग करेंगी..."

हमारे देश में एक संविधान लागू हुआ और उसी के अंतर्गत 12 आम चुनाव हुए। ये चुनाव केवल केंद्रीय संसद के लिए ही नहीं अपितु पंचायत जैसी धरातल की संस्थाओं के भी विधिवत चुनाव संपन्न कराए गए। सन् 1952 से लेकर 2001 तक जितनी भी सरकारें, चाहे केंद्र हो अथवा भारतीय संघ के घटक राज्य उनकी सरकारें मतदाता के मताधिकार पर ही चुनी गईं। इससे यह तो ज्ञात हुआ कि भारत की जनता ने बार बार इस शासन प्रणाली में विश्वास अभिव्यक्त किया। और यदि यह कहें कि उनकी आशा और आकांक्षाओं के विपरीत नीतियों, कार्यों शासकों की कार्यशैली तथा जन समस्याओं की अवहेलना के उपरांत ही समाज के बहुत बड़े

तबके ने इस व्यवस्था को चलायमान रखने में धैर्यता व सहनशीलता का परिचय दिया तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

देश के आम आदमी ने जहां एक ओर अपने राजनीतिक कर्तव्य का निर्वाह किया वहां दूसरी ओर जहां तक उनकी मूलभूत समस्याओं का प्रश्न है उसे निस्संदेह निराशा ही हाथ लगी। चुनाव के बाद चुनाव हुए, सरकारें बनीं और बदलीं लेकिन आमजन के हितों की स्पष्टतः अनदेखी की गई। इसके परिणामस्वरूप जगह-जगह सत्तारूढ़ दलों की सरकारों को बदलकर मतदाता ने अपने गुस्से का इजहार किया, वहीं कतिपय क्षेत्रों में सामाजिक न्याय के अभाव में कितने ही समूहों ने हिंसा का सहारा लिया। देश के कई क्षेत्र लगातार अशांत और कुछ सीमा तक अराजकता की स्थिति में आ गए। सामंजस्य की स्थिति अविश्वास में बदलती चली गई और व्यवस्था के संचालनकर्ता जिनमें हम राजनीतिककर्मियों और नौकरशाही को मुख्य नियंता कह सकते हैं, के प्रति पूर्णतया विश्वास का संकट उत्पन्न हो गया है। देश के शिखर की राजनीति करने वाले और कानून की व्यवस्था रखने वालों की साख बिल्कुल समाप्त हो गई लगती है। शायद यही कारण है कि शासन व्यवस्था स्वयं अपनी पैठ खो चुकी है। हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था के आकलन के वैसे कई आधार हो सकते हैं। वर्तमान संदर्भों में व्यवस्था के आकलन के लिए एक दो बिंदुओं को मुख्य रूप से रेखांकित कर सकते हैं। पहला, तो यह कि हमारी व्यवस्था का कार्यान्वयन किस प्रकार हो रहा है। और दूसरा, यह कि क्या यह व्यवस्था संवैधानिक मानदंड अथवा उसकी आत्मा के अनुरूप कार्य कर रही है? क्या यह सभी वर्गों, सभी लोगों अथवा बहुमत के हित में कारगर सिद्ध हुई है अथवा किसी वर्ग विशेष के हितों का ही परिपोषण कर रही है? इस आकलन का आधार मेरी दृष्टि में यह भी होना चाहिए—

जरा गहराई से विचार करें तो ज्ञात होगा कि हमारी संवैधानिक व्यवस्था का कार्यान्वयन संविधान में निहित आदर्शों और उद्देश्यों के अनुरूप नहीं हुआ है। बल्कि यों कहना चाहिए कि राजनीतिज्ञों का व्यवहार और कार्यशैली इस व्यवस्था के निर्दिष्ट उद्देश्यों के विपरीत दिशा में कार्य करती रही है। संसद और राज्य की विधानसभा के कार्य संचालन पर हमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। हर एक संवेदनशील और जागरूक नागरिक प्रजातंत्र की संस्थाओं की मान मर्यादा का उल्लंघन करते देख खिन्न नजर आता है। धीरे-धीरे जन साधारण में इन संस्थाओं से विश्वास उठता जा रहा है और कई अर्थों में अलगाव भी देखा जा सकता है। अब जरा दूसरे प्रश्न पर गौर कर देखें तो ज्ञात होता है कि विगत पचास वर्षों में आमजन प्रजातंत्र के नाम पर छला गया है। विकास योजनाओं का लाभ केवल मुट्ठी भर लोगों को ही प्राप्त हुआ है या वे जो पहले से ही उसका लाभ अर्जित करने में सक्षम थे। सभी शिक्षा संस्थान, औद्योगिक प्रतिष्ठान और पूरी नौकरशाही का तंत्र ही व्यवस्था का दोहन करने में लगी हुई है। आमजन को विकास का अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हुआ है। आर्थिक स्थिति, गरीबी के नीचे का जीवन स्तर और निरक्षरता के आंकड़े यही सिद्ध करते हैं कि देश के विकास के नाम खर्च किया गया धन संपन्न और सक्षम लोगों के हित में खर्च हुआ है। आम आदमी की स्थिति कई जगहों पर बद से बदतर हुई है। ऐसा लगता है जैसे विकास के क्षेत्र में अफसरों, राजनीतिज्ञों और ठेकेदारों के बीच लूट मची हुई है। कहने का अर्थ यह कि समूची व्यवस्था में जनमानस का बहुत छोटा भाग या वर्ग ही इससे लाभान्वित हुआ और अब तो ऐसा लगता है जैसे हमारी विकास योजनाओं का सोच प्रयास और अन्य कार्यक्रम कागजी पुलाव है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि राष्ट्रीय विकास के मानदंडों पर विचार करें तो यही कहना होगा कि किसी भी देश की सुरक्षा, अखंडता और उसकी जनतांत्रिक व्यवस्था वहां के नागरिकों के शिक्षा प्रसार, स्वास्थ्य का स्तर तथा मानव संसाधन के समुचित उपयोग पर निर्भर करता है। अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति आज के विश्व में बेमानी होती जा रही है। शिक्षा एवं स्वास्थ्य तथा पर्यावरण का समुचित लाभ किसी वर्ग विशेष तक ही सीमित न रहकर सभी नागरिकों को समान रूप से उपलब्ध हो सके यही समूची व्यवस्था के सुरक्षा की गारंटी है। यह व्यवस्था इसी समझ या प्रिमाईस पर टिकी है कि यह हम सबका राज्य है। कुछ लोगों का यही एहसास या विश्वास पांच दशकों के बाद भी विकसित नहीं हुआ है। वर्तमान में राजनीति, अर्थ एवं वित्तीय प्रबंधन का तौर तरीका तथा विकास के वैचारिक स्तर पर शून्यता और राष्ट्र के संसाधनों का असमानतापूर्ण वितरण जैसी स्थितियां आम आदमी के विश्वास को तिरोहित ही करती नजर आती है।

समूची राजनीतिक ऊहापोह और देश की वर्तमान स्थिति के

आकलन से यह भी ज्ञात होता है कि जिन लोगों के पास धन सत्ता है या जब सत्ता में है और जो अपने संबंधों के कारण सत्ता तथा नौकरशाही में शिखर पर बैठे लोगों को प्रभावित करने में सक्षम है उनका एक वर्ग विकसित हो गया है। इसमें नौकरशाही, राजनीतिज्ञ और धनपति इन तीनों की सांठगांठ हो गई है। समूची व्यवस्था का दोहन यही वर्ग कर रहा है। उनके पास सब तरह के साधन हैं और वे ही दिनोंदिन अधिक सुखमय और सुरक्षित हैं। संसद के सदस्य और विधानसभा के सदस्य भी अब अनेकानेक तरह की सुविधा प्राप्त कर सुरक्षित हो गए हैं। जबकि दूसरी ओर वे लोग हैं जो बेरोजगार हैं, भूमिहीन हैं तथा आम मजदूरी पर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इनकी कोई सुरक्षा नहीं है, जबकि वर्तमान जनतांत्रिक व्यवस्था के ये भागीदार कहलाते हैं। उनकी भागीदारी पांच वर्ष में वोट देने तक ही सीमित है। संक्षेप में ये दो स्पष्ट वर्ग हैं हम और वे। इसमें पहला असुरक्षित और सुविधाहीन जनसमुदाय सबसे अधिक घाटे में है। इसे हम गांधी के आदर्शों की व्यवस्था नहीं कह सकते। गरीब और सुविधाओं से वंचित तबके की कोई आवाज भी नहीं है। इसलिए यह गांधीवादी धारा की परछाई भी नहीं है। ले-देकर हमारी यह व्यवस्था राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों और धनाढ्यों की चरागाह बनकर रह गई है और ऐसी व्यवस्था को बरकरार रखने में उनका अपना हित निहित है। वास्तव में ये न्यस्तहित ही इसकी गाड़ी खींच रहे हैं।

एक जनतांत्रिक व्यवस्था के सफल संचालन और स्थाई बनाने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि जनप्रतिनिधि अपनी योग्यता और समाज में उनके योगदान के आधार पर चुने जाएं तथा वे जनप्रतिनिधि भी जनता के प्रति जवाबदेह बने रहें। इसी प्रकार नौकरशाही में व्यक्ति की योग्यता ही उसकी नियुक्ति तथा प्रमोशन का आधार होना चाहिए। उनका कार्य राजनीतिज्ञों और मंत्रियों के समक्ष निर्भीकता, निष्पक्षता तथा जनहित में अपनी राय देनी चाहिए। क्या हमारी नौकरशाही इस कर्तव्य का निर्वाह कर रही है? व्यवस्था के संचालन पर यदि दृष्टि डाल कर देखें तो यही ज्ञात होगा कि नौकरशाही की भूमिका ऐसी नहीं रही है जिसकी हम अपेक्षा करते हैं। वह स्वयं इसी भ्रष्ट व्यवस्था की भागीदार बन गई है। वह ले देकर राजनीतिज्ञों की जमात के साथ अपने न्यस्त हितों के रक्षार्थ समर्पण की स्थिति में आ गई है। उनकी अपनी स्वतंत्र भूमिका समाप्त हो गई है। इस जमात का भी राजनीतिकरण हो गया है। व्यवस्था के संचालन में इनकी भूमिका और कार्यशैली को देखते हुए जन सामान्य का इसमें विश्वास नहीं रहा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जहां तक जन-प्रतिनिधियों का प्रश्न है उनकी स्वार्थपूर्ण भूमिका के कारण ही जन साधारण में इस जमात की साख उठ गई है। इनका लक्ष्य केवल चुनाव जीतना और चुनाव में हुए खर्च की भरपाई करना तथा आने वाले चुनाव पर नजर रखने के सिवा कोई दूसरा लक्ष्य ही नहीं रह गया है। इस मानसिकता के चलते जन सरोकार के प्रश्न गौण हो गए हैं। जाति, संप्रदाय, परिवार और स्वहित की पूर्ति के दुष्चक्र में फंसा आज का राजनैतिक आने वाली पीढ़ी के लिए कुछ भी देने में असमर्थ और असहाय है। यह कैसी हास्यास्पद स्थिति है कि जहां गांव के लोगों के लिए पीने के पानी की समुचित व्यवस्था नहीं है। बच्चों के लिए स्कूल की छत नहीं है, उस देश के जनप्रतिनिधि अपने वेतन, भत्ते, टेलीफोन और यात्राओं में रियायतें बढ़ाने में कोई संकोच नहीं करते। वे पेंशनधारी हो गए हैं सिर्फ पांच वर्ष के लिए चुनाव जीतकर। एक स्वस्थ जनतंत्र में जन प्रतिनिधियों को अपने निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर देश के लिए पचास वर्ष आगे के सोच की आवश्यकता है। वर्तमान पर दृष्टि डाल कर देखें तो यही कहना होगा कि हमारे देश में चुने गए जनप्रतिनिधियों में इस सोच का सर्वथा अभाव है। उनकी कार्य सूची और सोच में वंचितों-शोषितों और साधनहीन जनसमुदाय के भविष्य की कोई तस्वीर ही नहीं है। केवल वे लोग ही उनकी सूची में हैं जो पहले से ही एक निश्चित आय, संपत्ति या जीवन निर्वाह का स्थाई जरिया रखते हैं।

प्रजातंत्रीय व्यवस्था मात्र चुनावी व्यवस्था ही नहीं है नियमित चुनाव तो इस शासन प्रणाली का मूल माध्यम है। इसका लक्ष्य है—सर्वहित सुखाय। देश में हर एक नागरिक को यह एहसास हो कि वह भी एक वृहद्-जनतंत्रीय समाज का अंग है और उसे इसका नागरिक होने का गर्व है।